इकाई 25 प्राचीन भारत में नारी

इकाई की रूपरेखा

25.0 उद्देश्य

25.1 प्रस्तावना

25.2 'नारी' पद की व्युत्पत्ति तथा पर्याय

25.3 समय के साथ नारी की स्थिति

25.3.1 वैदिककालीन नारी

25.3.2 उत्तरवैदिक काल में नारी

25.3.3 सूत्रकाल में नारी

25.3.4 स्मृतिकालीन नारी

25.4 समाज में नारी के विभिन्न रूप

25.4.1 माता

25.4.2 पत्नी

25.4.3 पुत्री

25.5 विभिन्न क्षेत्रों में नारी का अस्तित्व

25.5.1 नारी की सामाजिक स्थिति

25.5.2 नारी की धार्मिक स्थिति

25.5.3 नारी की पारिवारिक स्थिति

25.5.4 नारी की राजनैतिक स्थिति

25.5.5 नारी की आर्थिक स्थिति

25.6 नारी के अस्तित्व के नकारात्मक पक्ष

25.7 सारांश

25.8 शब्दावली

25.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

25.10 अभ्यास प्रश्न

25.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- वैदिक काल, उत्तर वैदिक काल, सूत्रकाल तथा स्मृति काल में नारियों की स्थिति तथा उनकी दशा में आए परिवर्तन को जान सकेंगे।
- प्राचीन भारत में नारी को प्राप्त अधिकारों से अवगत होंगे।
- कालान्तर में नारी से जो अधिकार छीन लिये गए, उनके विषय में जान सकेंगे।
- समाज में नारियों के पतन के कारण को जान सकेंगे।
- भारतीय संस्कृति में नारी के महत्त्व को जान सकेंगे।

25.1 प्रस्तावना

नारी और नर दोनों सृष्टि के आरम्भ के हेतुभूत कारक हैं। मनु और शतरूपा दोनों के बिना सृष्टि आगे वृद्धि को प्राप्त कर ही नहीं सकती थी। यतोहि दो से मिलकर ही एक बनना है अतः कौन एक श्रेष्ठ है, यह प्रश्न ही नहीं उठता। दोनों महत्त्वपूर्ण हैं। नर और नारी समान रूप से सृष्टि में विद्यमान हैं। हाँ! नारी को किंचित् अधिक सम्मान दिया जाना उचित है क्योंकि वह पुरुष से आधृत वीर्य को अण्डरूप में अपनी कोख में धारण करके नौ माह तक अपने शरीर की ऊर्जा से उसका सेचन करके मनुष्य रूप में उसे जन्म देती है और अपना दूध पिलाकर उस शिशु को जगत में प्रवृत्त होने का सामर्थ्य देती है। इतना ही नहीं शिशु का पालन-पोषण, अध्ययन, संस्कार-आधान आदि अनेकों कर्त्तव्यों के बिना किसी के आदेश दिये मातृत्व की प्रेरणा से आजीवन निर्वाह करती है। प्रकृति की सुकोमल रचना होने के कारण कदाचित् उसे अपमान भी सहना पड़ा, कभी अबला बनकर अत्याचार सहना पड़ा। प्राचीन काल में किस स्थिति में नारी रही तथा कालान्तर में उसकी दशा में कौन-कौन से सकारात्मक एवं नकारात्मक परिवर्तन आए? ये सभी प्रश्न इस इकाई के अध्ययन के प्रेरणा स्रोत हैं।

25.2 'नारी' पद की व्युत्पत्ति तथा पर्याय

नारी पद नर से निष्पन्न होता है इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि नारी नर से किसी भी क्षेत्र में कम है या हीन है, बल्कि यह सत्य अंगीकरणीय है कि नर और नारी जीवन रथ के दो पहिये हैं। यदि रथ का एक भी पहिया निकाल दिया जाए तो रथ की गति अवरुद्ध हो जाएगी। किसी भी पहिये को प्रथम स्थान पर बताकर दूसरे को गौण कहा ही नहीं जा सकता। दोनों एक दूसरे के पूरक हैं।

नृ धातु से अन्+ङीन् प्रत्यय के योग से नारी पद व्युत्पन्न होता है तथा नर से स्त्रीत्व की विवक्षा में ङीष् प्रत्यय से भी नारी पद निष्पन्न होता है। यहाँ नृ पद से मात्र पुंसत्व का बोध नहीं होता अपितु नरत्व/मनुष्यत्व जाति जाननी चाहिये। महाभाष्यकार पतंजलि लिखते हैं–**''नृधर्म्मा नारी, नरस्यापि नारी''।** नृ शब्द से नृनरयोर्वृद्धिश्च तथा शाङ्‌र्गरवादि सूत्र से ङीन् होकर नारी शब्द बनता है। (व्याकरण महाभाष्य, 4.4. 9)। यास्क निरुक्त में नारी पद का निर्वचन करते हैं **''नराः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु''।** (निरुक्त 5.13)

अर्धनारीश्वर की अवधारणा को हम सभी जानते हैं। ईश्वर का वह स्वरूप जिसमें नर और नारी का समान अंश बताया गया है। वह समानता के भाव को बता रहा है। ब्राह्मण ग्रन्थ भी नर और नारी का एक दूसरे के बिना अस्तित्वहीन होना मानते हैं। विवाह के बाद ही कन्या को नारी पद से संज्ञित किया जाता **है। ''पुमांसो वै नरः स्त्रियो नार्यः।''** (ऐतरेय ब्राह्मण 3.34) वैदिक भाष्यकार आचार्य सायण ने भी तैत्तिरीय आरण्यक में नारी को नर का उपकार करने वाली बताया है, **''नृणां महावीरार्थिनाम् उपकारित्वात् नारिः न अरिः = नारिः''**

नारी पद के स्त्री, मेना, ग्ना, जाया, योषा, सुन्दरी, जनि, वधू, पुरन्धि, दम्पती, पत्नी आदि अनेकों पर्याय हैं।

1. **'मानयन्ति एनाः पुरुषाः'** इति मेना अर्थात् पुरुषों के द्वारा जिसे आदर दिया जाता है। (निरुक्त, 3.21.2)

2. **'स्त्यायते गर्भो यस्यामिति'** अर्थात् जिसके द्वारा गर्भ धारण किया जाता है (निरुक्त, 3.4.1)।
3. स्त्रियः एव एताः शब्दस्पर्शरूपरसगन्धहारिण्यः। शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गन्धानां गुणानां स्त्यानां स्त्री अर्थात् शब्द आदि गुणों का विकास करने वाली स्त्री है। (निरुक्त 1. 4.20)
4. वधू – वहति श्वसुर गृहभारं या सा। (ऋग्वेद 10.80.1)
5. पुरन्धि – स्वजनसहितं पुरं धारयतीति। (श.ब्रा. 6.8.2.3)
6. विधवा – विगतो धवो भर्ताः यस्याः सा। (ऋग्वेद, 10.40.2)

इस प्रकार नारी के अनेकों पर्याय, उसकी व्युत्पत्ति तथा निर्वचन प्राप्त होते हैं जो उसकी कर्त्तव्यपरायणता तथा सामाजिक निष्ठा को पुष्ट करते हैं।

25.3 समय के साथ नारी की स्थिति

वर्तमान समय में नारी की दशा दुर्दान्त है। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' जैसी अवधारणा वाले भारत देश में नारी अपने सम्मान, स्वाभिमान तथा रक्षा के लिये लड़ रही है किन्तु यह दुर्दशा एकाएक नहीं हुई है। प्राचीन भारत में नारी को देवी पद प्राप्त था। इस इकाई में हमें नारियों की प्राचीन काल की दशा को तथा उस समय नारी अधिकार व रक्षा में हुए परिवर्तनों को जानना है। अतः प्राचीन काल को हम ग्रन्थों के कालानुक्रम से विभाजित करके विषय को जानेंगे। इस कालक्रम का चतुर्धा चिन्तन करेंगे।

(1) वैदिक काल (2) वैदिकोत्तर काल (3) सूत्रकाल (4) स्मृतिकाल

25.3.1 वैदिककालीन नारी

नारी की सामाजिक तथा सार्वविध दशाओं की दृष्टि से नारी जाति के लिये वैदिक काल स्वर्णिम काल रहा। विभिन्न संवाद-सूक्त सरमा-पाणि, यम-यमी, विश्वामित्र-नदी आदि से स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्रियाँ भी परम विदुषी होती थीं। वैदिक काल में नारी अपनी इच्छा से वर का वरण करती थी। माता-पिता की अनुमति से गान्धर्व विवाह की अनुमति प्राप्त थी। पत्नी को गृह की साम्राज्ञी कहा जाता था।

सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधिदेव वृषु।। (ऋ. 10.85.46)

ऋग्वेद में ही विधवा विवाह, पुनर्विवाह का प्रमाण भी मिलता है। पति की मृत्यु के उपरान्त देवर से विवाह सभ्यता विस्तार के लिये स्वीकृत था। यास्क ने तो देवर पद का निर्वचन ही इस प्रकार से दिया है कि देवर द्वितीय वर कहा जाता है–**देवरः कस्मात्? द्वितीयो वर उच्यते।**

ऋग्वैदिक काल में विश्पला जैसी कुशल योद्धा नारी इस बात का उदाहरण है कि स्त्रियों को युद्ध में भाग लेने का अधिकार भी प्राप्त था (ऋग्वेद 1.12.10)। धार्मिक कार्य स्त्री के बिना कदापि पूर्ण नहीं होते थे। यज्ञादि अनुष्ठान में अग्नि प्रज्ज्वालन भी जोड़े से ही करने का विधान प्राप्त है।

सामाजिक समारोह में भी पति-पत्नी एक साथ सम्मिलित होते थे। पुरुष के समान उपनयन संस्कार करवाकर नारी भी वेदाध्ययन की अधिकारिणी थी।

'पुं नामक नरकात् त्रायत इति पुत्रः' इस धारणा के कारण पुत्र प्राप्ति की अभिलाषा अधिक थी तथापि नारी को सम्मानित स्थान प्राप्त था।

25.3.2 उत्तरवैदिक काल में नारी

प्राचीन भारत में ऋग्वेद का काल वैदिक काल कहा गया है। यज्वादि संहितायें तथा वैदिक ज्ञाननिधि के सहायक व साधक ग्रन्थ ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषदों का काल उत्तरवैदिक काल कहलाया। वैदिक काल के समान ही समाज में नारी को प्रतिष्ठा और सम्मान प्राप्त था। विवाह में स्वेच्छा, शिक्षा में वेदाध्ययनादि का अधिकार, अविवाहित पुत्री का पिता की सम्पत्ति पर पूरा अधिकार कहा गया है। नारी यतोहि गृहस्वामिनी थी। विवाहोपरान्त सास-ससुर-पति-ननद, देवर सभी का ध्यान रखती थी अतः परिवार के तथा समाज के निर्णयों में उसका सम्मान किया जाता था। इस काल में पिता की सम्पत्ति में भी पुत्री के अधिकार की चर्चा प्राप्त है।

**अमाजूरि वः पित्रोः सचा सती समानादा सदसस्त्वा मिये भगम्।
कृषिं प्रकेतमुप मास्या भरदद्धि भागं तन्वो येन मामहः।। (अथर्ववेद, 18.3.1)**

उत्तरवैदिक काल में स्त्रियाँ युद्ध कौशल में भी निपुण होती थीं। ज्ञानवती होने से वाक्कौशल में भी पारंगत होती थी।

**गुहा चरन्ती मनुषो न योषा
समावती विद्ययेव संवाक्।। (यजुर्वेद 13.18)**

इस युग में धीरे-धीरे नारी की शिक्षा व्यवस्था घर में ही होने लगी। जिससे उसका सामाजिक सम्मान कुछ कम होने लगा इस काल में पुत्री को दुःख का कारण भी कहा गया। उच्च वर्ग की कन्यायें विधिवत उपनीत होकर पढती थीं। ये कन्यायें दो प्रकार की बताई गई हैं– (1) ब्रह्मवादिनी, (2) सद्योद्वाहा।

ब्रह्मवादिनी वे कन्यायें थी जो आजीवन ब्रह्मचर्य धारण करके अध्ययन, तप व साधना करती थीं। सद्योद्वाहा उन्हें कहा गया जो विवाह से पूर्व तक शिक्षा ग्रहण करती थीं और तभी तक ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं।

25.3.3 सूत्रकाल में नारी

सूत्रकाल में नारी की दशा में सबसे बड़ा नकारात्मक बदलाव यह आया कि सूत्रकाल में बाल विवाह होने लगे। नारी को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार तो था किन्तु शिक्षा प्राप्त करने वाली स्त्रियों की संख्या कम होती जा रही थी। गृह्यसूत्र में विवाह योग्य कन्या को 'नग्निका' कहकर सम्बोधित किया गया है।

ताभ्यामनुज्ञातो भार्यामुपगच्छेत् सजातां नग्निकां ब्रह्मचारिणीमसगोत्राम्। (हिरण्यकेशी 1.19.2)

वैदिक कोष के अनुसार आठ से दस वर्ष की कन्या को 'नग्निका' कहा जाता था। विवाह के समय ब्राह्म और दैव विवाह के आयोजन में पिता द्वारा सहर्ष पुत्री को दानादि से अलंकृत किया जाना वर्णित है इससे स्पष्ट है कि दहेज प्रथा का प्रचलन प्रारम्भ हो चुका था।

अन्तर्वेधृत्विजे दानं दैवोऽलंकृत्य।
ब्राह्मी विद्याचारित्रबन्धुशीलसम्पन्नाय
ददृद्यादाच्छाद्यालंकृताम्। (गौतमधर्मसूत्र, 1.4.4)

इस काल में यज्ञकर्म पति के बिना भी सम्पन्न किये जाने लगे। स्त्रियाँ पति की अनुपस्थिति में भी यज्ञ कर लेती थीं, जैसा कि पुरुकुत्स की पत्नी ने किया–

"पुरुकुत्सानी हि वामदाशद्ध व्येभिरिन्द्रा वरुणा नमोभिः।
अथ राजानं त्रसदस्युमस्या वृत्रहणं ददथुरर्थ देवम्।।" (कात्यायन श्रौतसूत्र, 5.10.16)

माता को इस कालखण्ड में अत्यन्त सम्मान प्राप्त था किन्तु दाय अधिकार से पुत्री को वंचित किया जाने लगा। विधवा होने पर देवर से विवाह इस काल में भी होता था क्योंकि कन्या को कुल के प्रति दिया जाता है ऐसा धर्मसूत्रों में उल्लेख प्राप्त है –

कुलाय हि स्त्री दीयते इति उपदिशन्ति। (गौभिल धर्मसूत्र 2.10.27)

25.3.4 स्मृतिकालीन नारी

स्मृतिकाल आते-आते नारी की प्रतिष्ठा कहीं-कहीं कम होती जा रही थी। महाभारत और मनुस्मृति में नारी की अपूर्व प्रशंसा प्राप्त है–

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।। (महाभारत आदिपर्व 74/70)
यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।। (मनुस्मृति 3.56)

कहीं नारी को वश में रखने का उल्लेख प्राप्त है।

न हि स्त्रीभ्यः परं पुत्रः पापीयस्तरमस्ति वै।
क्षुरधारां विषं सर्पो वह्निरित्येकतः स्त्रियः।। (महाभारत अनु. पर्व 40/4)
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्राः न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।। (मनु. 9.2)

स्मृतिकाल में बाल विवाह भी बढ़ गए। विद्याध्ययन भी उच्च वर्ग में ही सीमित हो गया। वेद मन्त्रों के उच्चारण का भी स्त्रियों के लिये निषेध कर दिया गया। धीरे-धीरे स्त्री को गृहकार्यों तक सीमित किया जाने लगा। अपवादस्वरूप कुछ स्त्रियाँ वैदिक ज्ञान प्राप्त करती थीं।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।। (मनुस्मृति, 2.67)

25.4 समाज में नारी के विभिन्न रूप

एक नारी, जन्म लेते ही पुत्री, बहिन, भांजी, भतीजी, पोती, दौहित्री, मौसी, बुआ जैसी सामाजिक पदवियों को प्राप्त कर लेती है। विवाह संस्कारोपरान्त पत्नी, माता, चाची, नानी, दादी जैसे पद उसे प्राप्त होते हैं। हर पद की अपनी गरिमा, अपना दायित्व और अपने कर्त्तव्य होते हैं। कहीं न कहीं समाज के संरक्षण, सांस्कृतिक हस्तान्तरण और सामाजिक व्यवस्थाओं को अनुकूल और अनुशासित रखने का दायित्व स्त्रियों का ही रहता है।

25.4.1 माता

माता के रूप में नारी वैदिक काल से ही पूज्या रही है। नारी जब मातृत्व को प्राप्त करती है वह उसके नारी जीवन की सर्वोत्कृष्ट पदवी होती है। माता की महिमा का बखान करते हुए मनु कहते हैं कि दस उपाध्यायों से आचार्य, सौ आचार्यों से पिता और हजार पिताओं से माता का गौरव अधिक होता है।

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते।। (मनुस्मृति 2/145)

माता और पिता दोनों मिलकर सन्तानोत्पत्ति करते हैं तथापि माता को श्रेष्ठ कहा जाता है क्योंकि वह गर्भ में भ्रूण को धारण भी करती है और उसका पोषण भी करती है।

तयोः शतगुणे माता पूज्या मान्या च वन्दिता।
गर्भधारणपोषाभ्यां सा च ताभ्यां गरीयसी।। (ब्रह्मवैवर्तपुराण, अध्याय 40)

जन्मदात्री माँ के अतिरिक्त मौसी, मामी, चाची, ताई, बुआ, सास, पूर्वजपत्नी को भी मातृतुल्य कहा गया है।

मातृस्वसा, मातुलानी, पितृव्यस्त्री, पितृस्वसो।
श्वश्रूः पूर्वजपत्नी च मातृतुल्याः प्रकीर्तिताः।। (मनुस्मृति)

शास्त्रों में षोडश मातृ कल्पना की गई है। ये सोलह प्रकार की स्त्रियाँ माँ कही गई हैं।

स्तन्यदात्री गर्भधात्री भक्ष्यदात्री गुरुप्रिया।
अभीष्टदेवपत्नी च पितुः पत्नी च कन्यका।।

सगर्भजा च या भगिनी स्वामिपत्नी प्रियाप्रसूः।
मातुर्माता पितुर्माता सोदरस्य प्रिया तथा।।

मातुः पितुश्च भगिनी मातुलानी तथैव च।
जनानां वेदविहिता मातरः षोडश स्मृताः।।

25.4.2 पत्नी

पत्नी को अर्धांगिनी, जाया, भार्या आदि नाम से भी बुलाया जाता है। जो पाणिग्रहण के उपरान्त पति के वामांग में वास करती है वह अर्धांगिनी कहलाती है। ''भर्तव्यत्वेन भार्यां च'' (म.भा.शा.प. 266/52) भर्ता के द्वारा पोषित की जाती है अतः भार्या कहलाती है और ''आत्मा हि जायते तस्यां तस्माज्जाया भवत्युत।'' (महाभारत वनपर्व, 12/70)। पत्नी के रूप में नारी अनेक दायित्वों का निर्वहण करती है, यथा – सदैव स्मितमुख रहना, गृहकार्यों में दक्ष होना, उपहारों से शोभित और मितव्ययी होना।

सदा प्रहृष्टया भाव्यं गृहकार्येषु दक्षया।
सुसंस्कृतोपस्करया व्यये चामुक्तहस्तया।। (मनु. 5/150)

भार्या पति को प्राणों से अधिक प्रिय हो तथा पतिव्रता हो–

सा भार्या या गृहे दक्षा सा भार्या या प्रियंवदा।
सा भार्या या पति प्राणा, सा भार्या या पतिव्रता।। (गरुडपुराण, 108/18)

विभिन्न ग्रन्थों में पत्नी को ही घर कहा गया है –

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।
गृहं तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते।। (म.भा.आ.प. 12/144/6)

ऋग्वेद में पत्नी को ही घर कहा गया है–**"जायेदस्तम्" (ऋग्वेद 3/53/4)**। गृहिणी के बिना गृह वन हो जाता है और गृहिणी से ही गृही गृहस्थ कहलाता है।

यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम्।
न गृहेण गृहस्थ स्याद् भार्याया कथ्यते गृही।। (बृहत्पाराशरस्मृति 6/71)

महाभारत में पत्नी को अर्द्धांग, पति की श्रेष्ठ सखा और धर्म, अर्थ, कामरूपी त्रिवर्ग प्रदात्री बताया है।

अर्धं भार्या मनुष्यस्य भार्या श्रेष्ठतमः सखा।
भार्या मूलं त्रिवर्गस्य भार्या मूलं तरिष्यतः।। (महा.भा.आदि पर्व, 74/4)

माता-पिता, भाई, सखी, पुत्र सभी सीमित सुख प्रदाता होते हैं। पति असीमित व अपूर्व सुख देता है। वही स्त्री की गति है। अतः पत्नी को पति के बिना जीवन की अभिलाषा भी नहीं करनी चाहिए।

न पिता नात्मजो नात्मा माता न च सखीजनः।
इह प्रेत्य च नारीणां पतिरेको गतिः सदा।।
मितं ददाति हि पिता मितं भ्राता मितं सुतः।
अमितस्य च दातारं भर्तारं का न सेवते।। (वाल्मीकि रामायण, 2/40/3)

पति चाहे रोगी हो, वृद्ध हो, विपन्न हो, हर हाल में पति की सेवा करनी चाहिये।

न कामये भर्तृविनाकृता सुखं
न कामये भर्तृविना कृता श्रियम्।
न कामये भर्तृविनाकृता दिवम्
न भर्तृहीना व्यवसामि जीवितुम्।। (महाभारत, 3/297/53)

25.4.3 पुत्री

पुत्री के रूप में नारी कन्या पद से अभिहित की जाती है। नारी जीवन का प्रथम सोपान कन्या है। वैदिक काल में कन्या को भी पुत्र के समान ही मंगलकारी समझा जाता था। नवरात्रि में कन्या को नवदुर्गा का प्रतीक मानकर उनका पूजन करना कन्या के प्रति श्रद्धा भाव को बताता है तथा मांगलिक आयोजनों में कुमारी कन्या का उपस्थित होना शुभ संकेत को बताता है। अष्टमंगल में कन्या भी गिनी गई है।

दर्पणः पूर्णकलशः कन्याः सुमनसो क्षताः।
दीपमालाध्वया लज्जा संप्रोक्तं चाष्टमंगलम्।।

उपनिषदों में विदुषी एवं आयुष्मती कन्या की प्राप्ति के उपाय का प्रसंग भी प्राप्त होता है जो यह बताता है कि पुत्र और पुत्री समान थे।

अथ य इच्छेद् दुहिता में पण्डिता जायेत सर्वमायुरियादिति।
तिलौदनं पाचयित्वा सर्पिष्मन्तमश्नीयातामीश्वरौ जनयितवै।।(बृहदा. उ. 6/4/17)

मनुस्मृति में पिता की सम्पत्ति पर पुत्री का भी समान अधिकार बताया गया है। यतोहि पुत्र-पुत्री का जन्म एक समान ही होता है। अतः दादा-दादी, नाना-नानी अपने पौत्र और दौहित्र में कोई भेद नहीं मानते थे।

वैदिक काल में कन्याओं को भी वेदाध्ययन, उपनयन और ब्रह्मचर्य पालन करने का अवसर प्राप्त था। ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या श्रेष्ठ वर को प्राप्त करती थी। अपने तपोबल से बहुत सी विदुषियाँ वैदिक ऋषिकायें भी हुईं, मन्त्रद्रष्टा हुईं। गार्गी, अपाला, वाचनवी, आत्रेयी, मैत्रेयी, काक्षीवती, घोषा, ब्रह्मवादिनी, भारती, लीलावती जैसी परम विदुषियों के नाम अत्यन्त आदर के साथ लिये जाते हैं। अतः स्पष्ट है कि बौद्धिक उत्थान में भी नारी का अस्तित्व शीर्ष पर रहा है।

स्मृतिकाल में नारी के लिये पतिसेवा को गुरुसेवा के समान बताया गया तथा विवाहोपरान्त पतिगृह में वास करना गुरुकुल में वास करना, गृह्य अग्नि को अग्निसेचन के समान फलदायी बताया गया।

''वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पति सेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।।'' (मनुस्मृति, 2.67)

विवाह संस्कार को अधिक महत्त्व दिया जाने लगा। स्मृतियों में आठ वर्ष की कन्या गौरी, नौ वर्षीया रोहिणी, दसवर्षीया कन्या तथा उससे अधिक को रजस्वला कहा जाता था। यदि माता-पिता व ज्येष्ठ भ्राता रजस्वला कन्या को अपने घर में देखते तो नरक जाते हैं। इस प्रकार के स्मृति वाक्यों का दुष्प्रभाव हुआ कि समाज में कन्यायें धीरे-धीरे शिक्षा से वंचित होने लगीं तथा उनका विवाह अपरिपक्वावस्था में ही किया जाने लगा।

अष्टवर्षा भवेद् गौरी, नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेद् कन्या, तत् उर्ध्व रजस्वला।।

माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्या रजस्वलाम्।।

यस्तां समुद्वहेत् कन्यां ब्राह्मणो ज्ञानमोहितः।
असम्भाष्यो ह्यपांक्तेय स विप्रो वृषलीपतिः।। (पराशरस्मृति, 7.6-9)

किन्तु अब भी प्रतिष्ठित सम्पन्न तथा उच्च कुलों में युवावस्था में ही पुत्री का विवाह किया जाता था। देश, काल व परिस्थिति के अनुसार कन्यायें ब्याही जातीं, कभी वेदों का अध्ययन प्राप्त कर विदुषी बनतीं तो कभी समाज के अधम नियमों की भेंट चढ़कर अपना जीवन संघर्ष करते हुए व्यतीत करतीं।

पुत्री के कुछ कर्त्तव्य भी बताए गए। यथा वह माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्यों के संरक्षण में रहे। घर के कार्यों में कुशल रहे। पिता की आज्ञा का पालन करे। घर आए अतिथियों का सत्कार करे।

इस प्रकार समाज में नारी के विभिन्न रूप अपने-अपने निर्धारित कर्त्तव्यों का पालन करते हुए समाज में अपनी प्रतिष्ठा को बनाए रखते हैं।

25.5 विभिन्न क्षेत्रों में नारी का अस्तित्व

भारतीय आर्य संस्कृति समूचे विश्व में अक्षुण्ण है। ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न इस सभ्यता में नारियों को अत्यन्त सम्मान एवं आदर प्राप्त था। सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक,

राजनैतिक व पारिवारिक किसी भी क्षेत्र में नारी नर से किसी भी तरह कम नहीं थी। पुरुष के समान हर क्षेत्र में दक्ष नारी समाज के निर्माण में माँ, पत्नी, पुत्री, बहन के दायित्वों का वहन करती थी। कभी शासिका बनकर समाज को नई दिशा देती। कभी ऋषिका बनकर मन्त्रद्रष्टा हुई। कभी अस्त्र-शस्त्र संचालन में दक्ष होकर प्रजा की रक्षिका बनी तो कभी गृहकार्य में कुशल होकर परिवार की संरक्षिका बनी। एक ही नारी विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न दायित्वों का निर्वाह करते हुए सदैव संस्कृति और सभ्यता की पोषक और संरक्षक रही।

25.5.1 नारी की सामाजिक स्थिति

प्राचीन भारत में नारी की सामाजिक स्थिति उच्च थी। समाज में नारी को सम्मानजनक पद भी प्राप्त होते थे और प्रतिष्ठा भी। पुरुष वर्ग की प्रेरणा का स्रोत भी नारी ही होती थी। नारी का नाम पुरुष के साथ बड़े आदर से और पुरुष से पहले लिया जाता था, यथा– राधा-कृष्ण, सीता-राम। वैदिक ज्ञान प्राप्ति का अधिकार होने के कारण नारी विदुषी होती थी और विद्वत्सभाओं में भी उन्हें सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। महिलाओं में प्रकृति सुलभ दया, ममता, प्रेम, करुणा, सौहार्द्र, क्षमा, सहनशीलता जैसे गुणों के कारण पारिवारिक विघटन नहीं होते थे और सामाजिक व्यवस्था सुचारु रूप से चलती थी। महिलाओं के संयमित जीवन तथा आचरण व तप से उन्हें दैवीय स्थान तो प्राप्त था ही, उनके तप के प्रभाव से समाज में उन्हें इतनी प्रतिष्ठा प्राप्त थी कि निष्कलंक चरित्र वाली नारी का स्मरण करने मात्र से महापातक जैसे जघन्य अपराधों से भी मनुष्य मुक्ति पा लेता है। ऐसी धारणा प्रचलित थी।

अहिल्या, द्रौपदी, सीता, तारा, मन्दोदरी तथा।
पंचकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशनम्।।

अपने वैदुष्य और स्वाध्याय से नारियाँ शास्त्रविद्या, कथा निर्माण, काव्यसर्जना, वाद-विवाद आदि में भी दक्ष थीं।

समाज का आधारभूत अंग नर और नारी हैं। इनमें से कोई भी कम या अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है। वैदिक काल में जितना प्राधान्य पुरुष को प्राप्त था उतना ही नारी को भी था। लिंगभेद सामाजिक व्यवस्था की दृष्टि से जाना जाता था। हेयता की दृष्टि से नहीं। स्त्री से परिवार, परिवार से कुल, कुल से सम्प्रदाय, सम्प्रदाय से समाज और समाज से राष्ट्र का गौरववर्धन होता है। बृहदारण्यक उपनिषद् में तो यहाँ तक कथित है कि अयोग्य पुत्र की अपेक्षा योग्य कन्या का जन्म माता-पिता के लिये श्रेयस्कर है।

अथ य इच्छेत् मे दुहिता पण्डिता जायेत्।। (बृहदारण्यक उपनिषद्, 4.4.28)

परस्त्री को माता के समान माना जाता था और माँ के समान महनीय और कोई नहीं था –

नास्ति मातृसमा काया नास्ति मातृसमा गतिः।
नास्ति मातृसमं त्राण नास्ति मातृसमा प्रिया।।

25.5.2 नारी की धार्मिक स्थिति

नारी को पुरुषों के समान ही उपनयन का अधिकार, ब्रह्मचर्य का अधिकार प्राप्त था। वेदाध्ययन करके वो याज्ञिक विधि-विधान को भी सीख लेती थी। काम्य और मोक्षपरक

धार्मिक आयोजनों में नारी समान अधिकारिणी होती थी। यज्ञीय अनुष्ठानों में पति के साथ पत्नी के बैठने का भी वर्णन है। धार्मिक उपसना दम्पती मिलकर करते थे। नारी के सद्योद्वाहा तथा ब्रह्मवादिनी स्वरूप भी उनकी धार्मिक पराकाष्ठा को बताते हैं। नारी को यज्ञ करने का अधिकार भी प्राप्त था –**''यज्ञं दधे सरस्वती।'' (ऋग्वेद 1/3/11)**

अग्निहोत्राादि में नारी नर के समान मानी गई है –

संहोत्रं स्म पुरा नारी समां वावगच्छति। (अथर्ववेद, 11/1/17/27)

माता सीता के भी संध्यावन्दनादि धार्मिक कार्य करने का प्रमाण मिलता है –

संध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी।। (वा.रा.सुन्दरकाण्ड 14/49)

25.5.3 नारी की पारिवारिक स्थिति

वैदिक काल में स्त्री अपने आप में परिवार की आधारशिला थी। गृहकार्य में दक्ष होने के साथ-साथ वह अन्य सामाजिक-राजनैतिक-धार्मिक-आयोजनों तथा अनुष्ठानों में भी अपने कुल की प्रतिष्ठा को बनाए रखने में समर्थ थी। याज्ञवल्क्य का वेदवित् ब्राह्मणों के साथ जब शास्त्रार्थ चल रहा था तब याज्ञवल्क्य का साथ देकर गार्गी ने अपने परिवार का गौरव बढाया। याज्ञवल्क्य की दोनों पत्नियाँ गार्गी और मैत्रेयी गृहकार्यदक्ष तो थीं ही, अतिथियों का सत्कार भी अत्यन्त आदरपूर्वक करती थीं और आगन्तुक विद्वानों से शास्त्रार्थ भी करती थीं।

परिवार समाज की प्रथम तथा सबसे छोटी इकाई है। परिवार से क्रमशः कुल-सम्प्रदाय समाज व राष्ट्र की प्रतिष्ठा होती है। नारी ही घर को स्वर्ग तथा नरक बनाती है। प्राचीन भारत में नारी के आदर्शरूप में अनेक ऋषिकायें, तपस्वी स्त्रियाँ और देवियाँ हुई हैं जो परिवार ही नहीं राष्ट्र का भी गौरव रहीं तथा भारत को सर्वश्रेष्ठ बनाने में इनका भी योगदान रहा। नारी के सम्मान में मनु ने भी कहा है –

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफला क्रियाः।।
शोचन्ति सामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।। (मनुस्मृति, 3/56-57)

परिवार में नारी को पत्नी, माता, पुत्री, पुत्रवधु, सास, जेठानी आदि अनेक नामों से बुलाया जाता है। रिश्तों के अनुरूप उसकी अनेकविध पदवियाँ हैं। पत्नी के रूप में नारी को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त था क्योंकि पत्नी ही माँ बनकर सन्तति का पालन-पोषण करके राष्ट्र के कर्णधारों की जननी तथा भरणी बनती है। वह विवाह संस्कार से अन्त्येष्टिपर्यन्त परिवार के उन्नयन हेतु ही अपना जीवन व्यतीत करती है।

कुक्षौ संधारणदात्री जननाज्जननी तथा।
अंगानां वर्धनादम्बा वीरसूत्वेन वीरसूः
शिशोः शुश्रूषणाच्छक्तिर्माता स्यान्माननाच्च सा।

अतः परिवार में नारी को अत्यन्त सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त थी। पतिव्रता होना पत्नी का प्रथम गुण बताया गया और अपने पातिव्रत्य की रक्षा के लिये स्त्री को षड्विध

दोषों से दूर रहने के निर्देश दिये गए। मादक द्रव्यों का सेवन, दुर्जन की संगति, पति से विरह, व्यर्थ इधर-उधर घूमना, असमय सोना, दूसरों के घर में रहना।

पानं दुर्जनसंसर्गः पत्या च विरहोऽटनम्।
स्वप्नोऽन्यगेहवासरच नारीसन्दूषणानि षट्।। (मनु. 9/13)

25.5.4 नारी की राजनैतिक स्थिति

प्राचीन भारत में महिलायें हर क्षेत्र में सक्रिय थीं। समय-समय पर घर परिवार का दायित्व, आजीविका में सहायता करके आर्थिक सहयोग का दायित्व, यज्ञादि में सहायिका बनकर धार्मिक उन्नयन हेतु कार्य करने के अतिरिक्त आवश्यकता पड़ने पर उत्तम शासिका भी बनी थीं। राजनीति में भी नारी अपनी अमिट छाप बना चुकी थीं। सूत्र ग्रन्थों में इस बात के प्रमाण प्राप्त हैं कि प्राचीन काल में महिलायें भी शासिका हुई हैं। कश्मीर में रत्नादेवी, सुगन्धा, सूर्यमति तथा कर्णाटका की रट्टादेवी अपने राजनैतिक कौशल का अनुपम उदाहरण हैं–

''येषां ते कुलपाराजन्'' (अथर्ववेद, 1/14/3)
''पुरन्धिर्योषा।'' (यजुर्वेद, 22/22)

मात्र शासिका ही नहीं, राज्य पर संकट आने की स्थिति में वीर योद्धा व सेनापति के रूप में भी नारी ने अपना शौर्य और पराक्रम प्रदर्शित किया है। ऋग्वेद की मुद्गलानि और विश्वला अपने पराक्रम के लिये प्रसिद्ध हैं। रामायण में कैकयी ने भी युद्धभूमि में राजा दशरथ का साथ दिया था।

अतः कहा जा सकता है कि नारी हर क्षेत्र में सबल और निष्ठावती थी।

25.5.5 नारी की आर्थिक स्थिति

स्मृतिकाल आते-आते नारी आजीविका के लिये हस्तकला, शिल्पकला, घर के कार्य तथा रचनात्मक कार्य करके धनार्जन भी करने लगी थी किन्तु ये स्त्रियाँ निम्न कुलों की होती थीं। उच्च कुल/वर्ण की स्त्रियाँ उस काल तक धन कमाने के लिये काम नहीं करती थीं।

रजकी चर्मकारी च लुब्धकी वेणुजीविनी। (पराशरस्मृति, 6.4)

कपड़े धोने वाली, चमड़े का काम करने वाली, पक्षियों का वध करने वाली तथा बांस की टोकरियाँ बनाने वाली कामकाजी स्त्रियाँ होती थीं। इसके अतिरिक्त दासी बनके सेवा कर्म से भी स्त्रियाँ धनार्जन कर लेती थीं।

कुलीन स्त्रियाँ दाय अधिकार से अपने हिस्से का धन प्राप्त कर लेती थीं। पिता की सम्पत्ति में पुत्री का अधिकार स्मृतिकाल तक नहीं था किन्तु पति की सम्पत्ति में पत्नी का अधिकार था। पुत्र के समान अंश पत्नी को भी दिया जाता था।

दाय के अतिरिक्त स्त्रीधन का भी चलन होने लगा था जिससे समाज में नारी की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होने लगी थी। विवाह के समय उसे पिता, मामा, चाचा, नाना तथा अन्य रिश्तेदारों व परिचितों से आशीर्वाद तथा उपहारस्वरूप मिलने वाला धन स्त्रीधन कहलाता था।

पति यदि प्रथम भार्या के रहते दूसरा विवाह करता तो द्वितीय विवाह में होने वाले व्यय जितना धन विवाह से पूर्व प्रथम पत्नी को दे। किसी पति के एक या अधिक पत्नियाँ होने की दशा में, किसी स्त्री के यदि एक से अधिक पुत्र हो या अनेक स्त्रियों के किसी के दो, किसी के पाँच, पुत्र हों तो सम्पत्ति का विभाजन माताओं की संख्या के आधार पर होता था ताकि किसी के साथ अन्याय न हो।

एकां स्त्रीं कारयेत् कर्म, यथांशेन गृहे गृहे।
बह्व्यः समांशतो देया, दासानामप्ययं विधिः।। (बृहस्पति स्मृति 262)

वैसे तो स्त्रीधन पर पूर्णतया नारी का ही अधिकार होता था किन्तु अकाल पड़ने पर, धार्मिक अनुष्ठान में, व्याधि आ जाने पर अथवा बन्दी बना लिये जाने पर पति स्त्रीधन खर्चकर सकता है, अन्यथा नहीं। आपातकाल में खर्च किये गए स्त्रीधन को लौटाने की बाध्यता भी पति को नहीं थी।

दुर्भिक्षे धर्मकार्ये च व्याधौ संप्रतिरोधके।
गृहीतं स्त्रीधनं भर्त्रा न स्त्रियै दातुमर्हति।। (याज्ञवल्क्यस्मृति. 147)

भले ही धनार्जन हेतु सभी वर्ग की स्त्रियाँ घर से बाहर न निकलती हों पर आपातकालीन स्थितियों में स्त्रीधन की सहायता से परिवार पर आए वित्तीय संकट को स्त्रियाँ दूर कर देती हैं।

25.6 नारी के अस्तित्व के नकारात्मक पक्ष

नारी वैदिक काल से स्मृतिकाल तक पूजनीया तो रही किन्तु समय के चक्र के चलते उसका सामाजिक स्तर गिरता जा रहा था। उसके अधिकार कम होते जा रहे थे। उसे अनेकविध नियमों के चलते दबाया जाने लगा था। यथा उपनयन की अधिकारिणी नारी को धीरे-धीरे उपनयन से वंचित कर दिया गया। उपनीत नारी वेदाध्ययन से अपना ज्ञानवर्धन करके वैदिक मन्त्रोच्चारपूर्वक यज्ञादि का अनुष्ठान कर लेती थी किन्तु अनुपनीत होने से उसका वेदाध्ययन बाधित कर दिया गया। सद्योद्वाहा और ब्रह्मवादिनी नारी ज्ञान के उत्कर्ष को प्राप्त कर लेती थी किन्तु वह भी बन्द हो गया। बाल विवाह जैसी सामाजिक कुप्रथा का चलन बढने लगा और नारी की अधोगति होने लगी थी। घर गृहस्थी के कार्य, चूल्हा चौका, भोजन आदि व्यवस्थाओं तक नारी का जीवन सीमित होने लगा। यहाँ तक कि पतिसेवा को गुरुसेवा बताया गया तथा पति के घर को गुरुकुल बताया गया।

वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारो वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौ वासो गृहार्थोऽग्निपरिक्रिया।। (मनु. 2/67)

नारी की स्वतन्त्रता भी धीरे-धीरे कम होने लगी। बाल्यावस्था में उसे पिता के संरक्षण में, युवावस्था में पति के तथा वृद्धावस्थ में पुत्र-पौत्र के संरक्षण में रहना होता था।

अस्वतन्त्राः स्त्रियः कार्याः पुरुषैः स्वैर्दिवानिशम्।
विषयेषु च सज्जन्त्यः संस्थाप्या आत्मनो वशे।
पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने।। (मनुस्मृति, 9.2.3)

समाज में धीरे-धीरे नारी की अबला के रूप में प्रतिष्ठा हो गई। उसे पति की अनुगामिनी बताया गया। पति को ही देवता कहा गया तथा विवाहोपरान्त पति और उसके घर को ही दुनिया मानने का निर्देश दिया जाने लगा।

भर्तृः शरीरशूश्रूषां धर्मकार्यं च नैत्यकम्।
स्वा चैव कुर्याः सर्वेषां नास्वजातिः कथंचन।। (मनु. 9/86)

पत्नी को यह बता दिया जाता था कि अग्नि को साक्षी मानकर तुमने पति को परमेश्वर स्वीकार किया है। उसके अतिरिक्त तुम्हारा कोई देवता नहीं है। जिस स्त्री का पति उससे सन्तुष्ट नहीं होता वह स्त्री सूखे बांस के वन के समान भस्मीभूत हो जाती है।

न सा स्त्री ह्यभिमन्तव्या यस्यां भर्ता न तुष्यति।
तुष्टे भर्तरि नारीणां तुष्टाः स्युः सर्वदेवताः।
अग्नि साक्षिकामित्येव भर्ता वै दैवतं परम्।।
दावाग्निजेव निर्दग्धा सपुष्पस्तबका लता।
भस्मीभवति सा नारी यस्य भर्त्ता न तुष्यति।। (म.भा.शा.प. 145/3-5)

यह धारणा इतनी बलवती होती गई कि पति की मृत्यु के उपरान्त पत्नी का जीवित रहना भी अभिशाप माना जाने लगा और सती प्रथा का आरम्भ हो गया। यदि स्त्री सती नहीं भी होती थी तब भी विधवा का जीवन अत्यन्त कष्टप्रद एवं दुरूह होता था। स्मृतिकाल में सती प्रथा के उल्लेख प्राप्त हैं। मात्र आपस्तम्ब धर्मसूत्र में सती प्रथा का उल्लेख है। महाभारत काल में महाराज पाण्डु की पत्नी माद्री का सती होना सती प्रथा की पुष्टि करता है।

तत्रैनं चिताग्निस्थं माद्री समन्वाहरोह। (म.भा.शा.प. 248.8)

प्राचीन काल में अनिवार्यतः सती होने की प्रथा नहीं थी किन्तु सती प्रथा का सूत्रपात हो गया था।

पुत्र पिता की चिता को अग्नि देने का अधिकारी होता है। तर्पण व श्राद्ध का अधिकारी होता है। अतः वही पिता को पितृऋण से मुक्त कर सकता था। इस कारण भी धीरे-धीरे कन्या के जन्म पर किसी प्रकार का महोत्सव आयोजित नहीं किया जाता था। गुरुकुल में वास के अधिकार छिन जाने से नारी युद्धकौशल, सैन्य प्रशिक्षण और राजनैतिक दक्षता से भी वंचित होने लगी थी। पारिवारिक उत्तरदायित्वों के निर्वाह की व्यस्तता के चलते उसके जीवन से ललित कलायें, शिल्प व वास्तु कलायें भी धीरे-धीरे दूर होती जा रही थी। बहुपत्नी प्रथा से उसे मानसिक आघात भी झेलने पडते थे।

25.7 सारांश

प्राचीन भारत के साहित्य को देखने से यह तो स्पष्टतया कहा जा सकता है कि जीवन के सभी क्षेत्रों में नारी की अहम भूमिका है। नारी सम्मान जहाँ होता है वहाँ देवताओं का रमण होता है अर्थात् वह स्थान अत्यन्त पवित्र हो जाता है। स्त्री का पावन चरित्र, उसके संस्कार और उसकी कर्त्तव्यनिष्ठा परिवार मात्र के नहीं अपितु समाज और राष्ट्र के उन्नयन के हेतु बनते हैं। प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से हमने प्राचीन काल में भारत में नारी की दशा के विभिन्न पक्षों का विहंगावलोकन किया। ब्रह्मा की महनीय कृति नारी का वैभव अत्यन्त विशाल है। इस इकाई को पढकर हमने प्राचीन भारत में नारी की सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, पारिवारिक और धार्मिक

स्थितियों को जाना। नारी के बिना सृष्टि में जीवन की कल्पना भी नहीं की जा सकती। नारी को समाज में अभिन्न उच्च और सम्मानजनक स्थान प्रदान किया गया। नारी को जननी, पत्नी, पुत्री, भगिनी, श्वश्रु, मातुलानी आदि अनेक सामाजिक नामों से बताया गया किन्तु सभी पात्रों के रूप में उसे दया, प्रेम, करुणा और सहनशीलता की प्रतिमूर्ति बताया गया। वेदों में लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, सरमा, विश्ववारा, रोमशा आदि मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं के नाम प्राप्त हैं तथा उपनिषदों में गार्गी, मैत्रेयी जैसी परम विदुषियों का उल्लेख है। अतः कहना उचित ही है कि प्राचीन भारत में नारी को उच्चपद व सम्मानजनक प्रतिष्ठा प्राप्त थी।

25.8 शब्दावली

भार्या	–	पत्नी
जाया	–	जन्म देने वाली
दम्पती	–	पति और पत्नी
नग्निका	–	विवाह योग्य कन्या (अष्टवर्षीया)
सद्योद्वाहा	–	वेदाध्ययन पर्यन्त ब्रह्मचारिणी
ब्रह्मवादिनी	–	आजीवन ब्रह्मचारिणी
प्रियंवदा	–	प्रिय बोलने वाली

25.9 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. भारतीय संस्कृति – डॉ. किरण टण्डन, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 2007
2. महाभारत (पंचम खण्ड) शान्ति पर्व, मोतीलाल बनारसीदास, गोरखपुर, 1969
3. महाभारत (प्रथम खण्ड) आदिपर्व, सभापर्व, मोतीलाल बनारसीदास, गोरखपुर, 1969
4. महाभारत, भीष्मपर्व, श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, बसन्त श्रीपाद सातवलेकर पारडी
5. मनुस्मृति, श्रीमती उर्मिला रस्तोगी, परिमल पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2005
6. याज्ञवल्क्यस्मृति, श्री उमेश चन्द्र पाण्डेय, चौखम्भा संस्कृत ऑफिस सिरीज, वाराणसी, 1967
7. वर्णव्यवस्था का इतिहास, सीताराम, पल्लव प्रकाशन, दिल्ली, 2012
8. आश्रम व्यवस्था (वैदिक मर्यादाओं के आलोक में), महात्मा गोपाल स्वामी, चौखम्बा पब्लिकेशन, वाराणसी, 2014
9. भारतीय संस्कृति, प्रो. वाई.एस. रमेश, हंसा प्रकाशन, जयपुर, 2007
10. धर्मशास्त्र का इतिहास, पी.वी. काणे, (प्रथम भाग), हिन्दी समिति, लखनऊ, 2000

25.10 अभ्यास प्रश्न

1. प्राचीन भारत में नारी की स्थिति पर निबन्ध लिखिए।
2. प्राचीन भारतीय नारी के अस्तित्व के नकारात्मक पक्ष पर प्रकाश डालिये।
3. नारी पद की व्युत्पत्ति व उसके पर्याय को स्पष्ट कीजिए।